वीथिका ई-पत्रिका

www.VITHIIKA.ORG

जून , 2023

युद्ध बनाम बुद्ध

जब घने अँधेरे में
मन उकेरेगा उजली किरणें-
उसमें होंगे हँसते बच्चे गलियों में
उन पर पड़ती मीठी धूप ।
उन चित्रों में
उजड़ी गलियां, अकेले बच्चे
और गर्मी तीखी
कहिये आपका युद्ध बस यही भर पाएगा न !

वीथिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

चित्रा मोहन
मुख्य सलाहकार संपादक

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

श्री मनोज कुमार सिंह

श्री अविनाश पाण्डेय

डॉ अखिलेश पाण्डेय

जय श्री

डॉ शिवमूरत यादव

उज्जवल उपाध्याय

अश्विनी तिवारी

अर्चिता उपाध्याय

रजनीकांत तिवारी

संपादकीय समिति

डॉ मोहम्मद ज़ियाउल्लाह

डॉ धनञ्जय शर्मा

डॉ सुधांशु लाल

एड. सत्यप्रकाश सिंह

श्री विनोद कोस्ती

श्री नन्दलाल शर्मा

ग्राफिक डिज़ाइनर
हर्षवर्धन, पूजा मद्धेशिया

संरक्षक
यशिका फाउंडेशन, मऊ

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

आपकी गलियां

अपनी बात	04
युद्ध बनाम बुद्ध	05
जादू, जादूगर और हम	07
फोटोग्राफी	09
हम याद बहुत आयेंगे	12
कहाँ गये वो गाँव	16

वागामोन	19
न्याय की जन संवादशीलता	20
पिताजी की बातें	21
आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस	22
भारत में मातृसत्तात्मक समाज	23
कबाब का इतिहास	25
सोंधी मिट्टी	27
कथा क्रमशः	29

Visit

WWW.VITHIKA.ORG

to download this current
issue to your tablet

अपनी बात

हम समय के जिस बिंदू पर खड़े हैं, उसकी गति बहुत अधिक है । क्षण भर को आंख झंपकी कि आप एक दुसरी ही दुनिया में खड़े होते हैं । इस सारे बदलाव की आहट हमें अपनी गली में दिख जाती है । छुट्टियों पर गली में स्टंप लगा खेलते बच्चे अब हाथों में फोन थाम घर में पड़े रहते हैं। वो हंसती, गुलज़ार गलियां स्मृति का अटूट हिस्सा हैं । लगता है अभी ये गली मुड़ेगी और हम उसी गली में दुबारा खड़े होंगे । पर मानव ज्ञान की ये वीथिकायें कभी पीछे नहीं जातीं, ये आगे बढ़ती हैं, हां आप चाहें तो हर गली में हो रहे बदलाव को संजो सकते हैं, उसे सूचना बना सकते हैं, उसे ज्ञान मान सकते हैं ।
आज मानवता युद्धों के बीच से गुज़र रही है, ऐसे में आँखों को बंद करके किसी साहित्य या विज्ञान का निर्माण करना उचित न होगा, पर यह भी सच है कि तमाम मुश्किलों के बाद भी मुस्कुराते चेहरे हमें खुशियाँ दे ही जाते हैं ।
हमारी यह यात्रा इस वीथिका के प्रथम द्वार पर है, आईये साथ-साथ हर घर-हर गांव-हर मेढ़-हर गली से गुजरते हैं। वीथिका ई-पत्रिका का यह प्रथम अंक आप प्रबुद्ध पाठक के समक्ष है, आशा है आपका स्नेह हमारी वीथिका तक अवश्य पहुंचेगा ।

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

युद्ध बनाम बुद्ध

मानव का रचा हुया सूरज
मानव को भाप बनाकर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह / जली हुई छाया
मानव की साखी है।

हिरोशिमा, अज्ञेय

डॉ धनञ्जय शर्मा
लेखक व असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सर्वोदय पोस्ट ग्रेजुएट महाविद्यालय, घोसी, मऊ

यदि पृथ्वी पर बने हुये सभी परमाणु अस्त्रों और आयुधक सामग्री का उपयोग एक साथ किया जाय तो क्या होगा ? शायद सभ्यता जहाँ से शुरू हुई थी, हम वहीं पहुँच जायेंगे । मानव सभ्यता के आरम्भ से मानव जब कंदराओं से निकलकर नदी की तलहटी में रहना आरम्भ किया तब उसने जंगली जानवरों से आत्मरक्षा के लिए के लिए पहली बार नदी के किनारे पड़े गोलाश्म को हाथ से उठाकर फेंकना पड़ा और वहीं से आत्मसुरक्षा की भावना में सामूहिक प्रयत्न द्वारा नित नए शोध करता रहा। आज गोलाश्म फेंकने से लेकर थ्री नाट थ्री, इंसास, AK47 जैसे नई तकनीकी की अनेक राइफल्स बना ली गयी। इसके अलावा अनेक प्रक्षेपास्त्र, मिसाइलें, परमाणु बम बना लिए गये, अब दुनिया अणुबम की तैयारी में है।

कहना अतिवादी नही होगा कि यदि इन सारे युद्धक सामग्री का एक साथ प्रयोग किया जाय तो पृथ्वी अपनी कक्षा छोड़कर सूर्य में विलीन हो जायेगी। बहरहाल आज हमने पृथ्वी को बारूद के ढेर पर रख दिया है, आवश्यकता है तो सिर्फ चिनगारी देने की ।

आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से संसार की सीमाएं सीमित होने लगी हैं। लोग एक दूसरे से तेजी से सम्पर्क में आ रहे हैं। अत: बढ़ता हुआ सम्पर्क मूल्यहीनता की स्थिति का कारक है। बढ़ते हुए संचार साधनों रेल, डाक, तार, मोबाइल, दूरदर्शन आदि के कारण भावनात्मक संशक्ति का क्षेत्र कई सौ प्रतिशत बढ़ा दिया है। परिणाम स्वरूप मानवीय सौहार्द में उत्तरोत्तर कमी होती जा रही है। ऐसी स्थिति में हम शांति और सुकून की तलाश कर रहे है। हम शक्ति-संतुलन द्वारा शांति की खोज में लगे थे। धीरे-धीरे शांति की खोज में बात युद्ध तक पहुँच गयी और प्रथम विश्व युद्ध लड़ा गया पर शांति नही मिली । फिर दूसरा महायुद्ध लड़ा गया, परिणाम स्वरूप दुनिया दो ध्रुवीय खेमे में बंट गयी । द्वितीय विश्वयुद्ध का परिणाम दूरगामी सिद्ध हुआ युद्ध कालीन जीवन की क्षिप्रता और गति शांतिकालीन जीवन की तुलना में कहीं अधिक होती है ।

युद्धकालीन उखड़े हुए मूल्य और परिवार फिर आसानी से नहीं जम सके; क्योंकि महायुद्ध तो समाप्त हो गया पर उसके स्थान पर आसानी से समाप्त न होने वाला शीत युद्ध आरम्भ हो गया। विकसित और विकासशील देश अंदर-अंदर युद्ध की तैयारी की हालत में रहते हैं । इस प्रकार युद्ध की मनोवृत्ति का दबाव कम नहीं हुआ, बढ़ता ही गया । इस प्रकार पूरा विश्व दो ध्रुवीय राष्ट्रों में बंटकर सुलगने लगा और तीसरे महायुद्ध की तैयारी में जुट गया।

बढ़ते संचार के साधनों और सोशल मिडिया के ज़माने में जहाँ विश्व एक गांव बन गया है। विकेन्द्रीकरण दौर में समाज का टूटना, परिवारवाद का संयुक्त परिवार से एकल परिवार और एकल परिवार से एकांकी जिंदगी, मैं और मेरी तन्हाई तक सिमट गयी है। आज विश्व के प्राय: देशों में या तो गृहयुद्ध चल रहा है या पड़ोसी देशों से संघर्ष चल रहा है- जैसे रूस-यूकेन-विवाद, चीन की साम्राज्यवादी नीति, इजरायल-फिलिस्तीन विवाद, पाकिस्तान का गृहयुद्ध आदि। ऐसे राष्ट्रों में लोकतंत्र के नाम पर सैन्यतंत्र एवं उपनिवेशवादी संस्कृति का विकास हो रहा है। तथा पूँजीवाद में बाजारवादी संस्कृति का विकास हो रहा है। बाजारवाद के अनुसार सभी वस्तुएँ उपयोगी हैं और से इसके मूल्य का निर्धारण बाजार द्वारा किया जा रहा है। बढ़ते हुए मूल्य के दौर में मानव मूल्य गिरता जा रहा है।

सभ्यता के आरम्भ से जिस आत्मरक्षा की भावना से तकनीकी विकास होता गया, उसी काल में ऋषि-मुनियों एवं संतो द्वारा मानसिक शांति ज्ञान एवं विवेक को जागृत करने के लिए गहन चिंतन होते रहे। कहा भी जाता है विज्ञान हमें हथियार बनाना सिखाता है तो साहित्य एवं दर्शन इसे चलाना सिखाता है। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय सत्य, अहिंसा और विश्व शांति की स्थापना पर निर्भर है। भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना, सार्वभौमिक भाईचारे की भावना को रखते हुए इस बात पर प्रकाश डाला गया कि सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है, जहाँ हर व्यक्ति इसी परिवार का सदस्य है, चाहे उसकी नस्ल, धर्म, राष्ट्र या जाति कुछ भी हो। इसी क्रम में आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का उदय हुआ। द्वितीय नगरीकरण के दौर में महात्मा बुद्ध का आगमन एक बड़ी घटना के रूप में हुआ। लोहे के आविष्कार के बाद व्यापकरूप में निर्वनीकरण हो रहा था । बड़े- बड़े राज्य बन रहे थे, साम्राज्यवादी शक्तियों का विस्तार हो रहा था। एकतरफ कृषि के लिए पशुओं (गोवंश) की आवश्यकता थी तो दूसरी ओर साम्राज्य के लिए अश्व की आवश्यकता थी । ऐसे वातावरण में होने वाले बड़े-बड़े यज्ञों जैसे- अश्वमेध यज्ञ, नरमेध यज्ञ, पुरुषमेध यज्ञ में बहुतायत संख्या मे अश्वशावक या बछड़े यज्ञ में आहूति दे दिये जाते थे । महात्मा बुद्ध द्वारा राजकीय स्तर पर हो रहे इस हिंसात्मक वृत्ति पर रोक लगायी गयी। इस हेतु तथागत बुद्ध द्वारा पंचशील का सिद्धान्त दिया गया।

महात्मा बुद्ध के पंचशील के सिद्धांत (हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, और नशा न करना) को राजनीतिक रूप देकर पं. नेहरू ने राजनीतिक मंच पर पंचशील के सिद्धांत का आदर्श प्रारूप प्रस्तुत किया । विश्वशांति और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को ध्यान में रखकर प्रत्येक राष्ट्र अंतराष्ट्रीय सम्बंधों का निर्वहन करते समय पंचशील के सिद्धांत - अनाक्रमण, अहस्तक्षेप, एकदूसरे की सम्प्रभुता और अखण्डता का आदर करना, सभी देशों के साथ समानता का व्यवहार करना तथा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का पालन करें तो विश्व में कोई तनाव और विवाद नहीं रह जायेगा।

ज्ञान, ध्यान और सत्य अहिंसा की यह परम्परा भक्ति आन्दोलन के रूप मे भी मिलती है। 15वीं शताब्दी में हुआ एक धार्मिक आन्दोलन जिसमें सभी वर्ग के लोग उठ खड़े हुए, उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम सभी दिशाएं जाग उठीं। अन्याय, अत्याचार, शोषण के खिलाफ मध्यकालीन संतों-भक्तों का एक धार्मिक सांस्कृतिक जागरण हुआ । इन संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से वही कार्य किया जो महात्मा बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद करते थे। मध्यकालीन संत तुलसीदास ने मानव एकता स्थापित करने के लिए लोकमंगल एवं समन्वय का संदेश दिया - "मंगल भवन अमंगल हारी" या "मंगल करनी अमंगल हरनी तुलसी कथा रघुनाथ की"। समन्वय की भावना के कारण ही विद्वानों ने इसे विश्व-काव्य कहा। इस ग्रंथ में जीवन के हर पहलू और मानव स्वभाव की प्रत्येक दशा का सफल निरुपण किया गया है । मानव जीवन में मर्यादा की प्रतिस्थापना एवं समन्वय की व्यापक दृष्टि मानस को विश्व-काव्य के पद पर स्थापित करती है। इन पंक्तियों के माधाम से मानस का संदेश दिया गया है, “जड़ चेतन गुनदोषमय विश्व किन्ह करतार” । इसी प्रकार अनेक संत कबीर,रैदास, नानक, मीरा, रसखान आदि संतों ने संदेश दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि आज सम्पूर्ण विश्व को शांति की आवश्यकता है। सभी देश अपने -अपने स्तर पर लगे हैं पर शांति कहीं खोई हुई वस्तु नहीं है जो खोजने पर मिल जाए । शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के तहत हमें बुद्ध बचनों को अपनाना होगा, मानस के संदेश को सुनना होगा, वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव को अपना होगा। भारतीय संस्कृति के आदर्शवाक्यों- अप्प दीपो भवः, जियो और जीने दो, अहिंसा परमो धर्मः, परमोधर्मः, सत्यमेव जयते को अपनाना होगा। प्रधानमंत्री जी द्वारा दिए गये संदेश, “पूर्व की ओर देखो” के अंतर्गत इन सभी बातों को वैश्विक मंच पर रखना होगा, अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब तीसरा विश्व युद्ध होगा जिसमें सारे परमाणु हथियार प्रयोग किए जाएंगे ।

जादू, जादूगर और हम

डॉ शिवमूरत यादव
Post Doctoral Research Fellow
University of Oklahoma, Health Sciences Center, USA

आज विज्ञान हमारे बीच किसी जादू से कम नहीं है । आम आदमी जादू में अधिक रूचि रखता है । विज्ञान ने हमें क्या-क्या नहीं दिया । दवा की एक छोटी सी गोली हमारे शरीर के दर्द को दूर भगा सकती है, हम किसी जादू की तरह आसमान में उड़ सकते हैं, हजारों किलोमीटर की दुरी कम से कम समय में तय कर सकते हैं, यहाँ तक की घर बैठे उतने दूर आदमी से सीधे देखते हुए बात भी कर सकते हैं । ठंडी में गर्मी और गर्मी में ठंडी का एहसास ले सकते हैं, दिन को रात और रात को दिन कर सकते हैं । हम अतीत को भविष्य के लिए संजो सकते हैं, किसी भी पल को हम चित्र, चलचित्र के रूप में संरक्षित कर सकते हैं। क्या यह सब किसी जादू से कम है ।

इतिहास साक्षी है कि महान विज्ञानी गैलिलियो गैलिली ने अपनी अडिग तर्क-शक्ति व साहसिक विज्ञान के द्वारा आधुनिक युग के लिए चमत्कारों व जादू से भरे संसार का दरवाज़ा खोल दिया था । और इसके लिए उन्हें भारी कीमत भी चुकानी पड़ी । रसायन, भौतिक, जीव, भूगर्भ से लेकर अन्तरिक्ष तक विज्ञान और वैज्ञानिक चिन्तन ने इस दुनिया के कहानियों में भरे सपनोँ को सच कर हमारे सामने रख दिया ।

ऐसे समय में विज्ञान की दशा आज वैसी ही है जैसी इस आधुनिक भौतिकवादी युग में माँ-बाप की है । जिसकी धन-संपदा यश पर अपना अधिकार बच्चे अवश्य समझते हैं पर अपनी जिम्मेदारियों से कतराते हैं । उसी तरह विज्ञान की सारी सुख-सुविधाओं का भोग आधुनिक समाज पूर्णरूप से कर रहा है लेकिन विज्ञान के प्रति अपना दायित्व वह नहीं समझता । जैसे माँ-बाप के लिए सहारे की आवश्यकता होती है वैसे ही विज्ञान को भी इस सहारे की आवश्यकता होती है ।

तो क्या हमारा यह दायित्व नहीं बनता कि इस जादू के जादूगरों, उन महान वैज्ञानिकों के लिए हम भी कुछ करें । अपने आस-पास के जीवन में विज्ञान से जुड़े विषयों पर चर्चा, चिन्तन, शोध की ललक को अपनाकर, बच्चों के अंदर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास व प्रोत्साहन कर हम इन विज्ञानियों की राह बहुत आसान बना सकते हैं ।
हम सपने देखते हैं, वही सपने साहित्य का हिस्सा बन हमें जीवन-दृष्टि देते हैं, विज्ञान अपने प्रयोगों, सिद्धांतों, अनुसंधान के द्वारा उन सपनों को सच बनाता है, विज्ञान के इन उत्पादों से हम इतिहास रचते हैं, पुनः इसी इतिहास से आगे हम नए सपने देखते हैं । साहित्य-विज्ञान-इतिहास का यह क्रम चलता रहता है । और इन्हीं सपनों की सीढ़ियों के सहारे मानवता दिन—प्रतिदिन आगे बढती चली जाती है ।

समाज को बस निर्माणकारी सपने देखने के लिए तैयार रखिये, नवीनता को अपनाने को तैयार रहिये, इतना करने से ही यह जादुओं से भरी दुनिया इन जादूगरों की मुस्कुराहटों से खिल जायेगी । और भला विज्ञान के इन जादूगरों को मानव की सरल मुस्कराहट से अधिक तो कुछ चाहिए भी नहीं ।

फोटोग्राफी

लेखिका - श्रीमती शैली जी

मेरे साथ एक लड़की पढ़ती थी, उसका नाम था ओमपती। गाँव से आती थी, बिल्कुल देसी।
सूरत भी थी गाँव की सोंधी मिट्टी के तेल सी। वर्ष 1978-79 की बात है हाई स्कूल के फॉर्म भरने थे। पहचान के लिए पासपोर्ट साइज़ के छायाचित्र लगने थे। उस ज़माने में ऐसे फोटो, स्टूडियो में खिंचते थे। रंगीन नहीं, केवल श्वेत-श्याम ही होते थे ।
कम ही मौकों पर ऐसे चित्र खिंचते थे। इसलिये फोटो खिंचवाना उत्सव नहीं, महोत्सव से लगते थे। फोटो खींचने के लिये बहुत जतन होते थे। गाढ़े रंग पर हल्के रंग के प्रिंटेड कपड़े चुने जाते थे, क्योंकि ये ब्लैक एन व्हाइट में सुन्दर नज़र आते थे। चेहरे को पाउडर से सफ़ेद किया जाता था, आँखों को काजल से फ़िल्मी तारिकाओं के तर्ज़ पर सज्जित किया जाता था। बालों को धो कर रूखा करते थे। रूखे बाल ही चेहरे को सुन्दरता देते थे। तेल लगे बाल तो सिर से चिपक जाते थे। अल्हड़ किशोर चेहरों को सम्हाल नहीं पाते थे।

बड़े जतन से फोटो खिंचाई जाती थी। उसका प्रिंट पाने की बेहद उत्सुकता रहती थी। प्रिंट भी कहाँ तुरंत मिलते थे, चार-पाँच दिन कम से कम, कभी तो हफ्ते भर बाद मिलते थे। प्रतीक्षा के दिन, रिजल्ट आने की सी बेचैनी से कटते थे। कुछ सामान्य चेहरे भी 'फ़ोटोजेनिक' होते हैं। कई खूबसूरत चेहरे फोटो में अच्छे नहीं दिखते हैं। यहीं पर असली और फोटो का फर्क़ आ जाता है, प्रायः कैमरा वह नहीं दिखाता, जो उसके सामने आता है।

ऐसा ही हादसा उस दिन भी हुआ था। जब सबने ओमपती का चेहरा फोटो में देखा था। फोटो में वह ग़ज़ब की लग रही थी। सुंदरियां भी उसके आगे फीकी-फीकी सी लग रही थीं। क्लास में उस दिन सन्नाटा सा छाया हुआ था, मेरा उस दिन कैमरे से मोहभंग हुआ था।

बहुत दिनों के बाद भूली बातें याद आयीं थीं, जब कोई पुरानी ब्लैक एन व्हाइट फोटो मेरे हाथ आयी थी. कैमरे भी उन दिनों बहुत कम होते थे। 'सिंगल माल्ट' की तरह धनी घरों में मिलते थे। फोटो खींचना खर्चीला था। पहले तो कैमरा महँगा था। क्योंकि अधिकतर कैमरे विदेशों से आते थे। इसलिये क्रेता की जेब पर बोझ डालते थे। फिर रील, उसकी डिवेलपिंग और फिर प्रिंट होना। सभी में पैसे और समय बहुत लगता था, इसलिए फोटो खींचने वाला एक-एक स्नैप का हिसाब-किताब रखता था। कैमरे के फ्रेम में आने को हरेक बेताब रहता था। अगफा क्लिक 3, और आयसोली 2 भारत में बनते थे। लेकिन उसमें भी लेंस विदेशी ही लगते थे। सोनी, याशिका, पैनटेक्स आदि विदेशों से आते थे। यह कैमरे अच्छे होते थे। सेटिंग्स में विविधता होती थी। इनसे खींचे हुए फोटो प्रीमियम से दिखते थे। बाग-बगीचों में, सरसों के खेतों में, छत के ऊपर या क़ीमती कुर्सी पर। बड़े जतन से लोकेशन खोजते थे। दाएँ-बाएँ, बैठते या खड़े होते थे। पोज़ बनाने की मशक्कत होती थी, रौशनी कितनी है, इसकी भी फिक्र होती थी। क्योंकि 'ब्राइटनेस सेटिंग' की सुविधा, कैमरे में लगभग नहीं होती थी। रील अलग-अलग स्पीड की आती थी जो कम या ज्यादा रोशनी में फोटो सही खींचती थी।

लेकिन यह जानकारी कम लोगों को होती थी। इसलिए उस तक पहुँच केवल बड़े शहर के प्रोफेशनल्स की होती थी। यानी फोटोग्राफी बहुत मुश्किलों भरी होती थी। फ्लैश की व्यवस्था इनबिल्ट नहीं थी। इसलिये सामान्य लोगों को दिक्कत बहुत होती थी। फ्लैश की व्यवस्था बाहर से होती थी। इसकी भी कीमत ज़्यादा होती थी। एक बार में एक बल्ब जो जलता था। वही उसके जीवन का अन्तिम पल होता था। बल्ब फ्यूज हो जाता था। अगले फ्लैश के लिए नया बल्ब लिया जाता था।

फोटोग्राफी की शुरुआत 1816 में 'निएपसे' के द्वारा की गई थी। जो लिथोग्राफ का परिवर्तित रूप था। इसके लिए कई प्रकाश-संवेदनशील रसायनों का एक साथ प्रयोग किया जाता था। लैवेंडर के तेल में घुलने वाले बिटुमेन का उपयोग भी प्रयोगों का हिस्सा था। वैज्ञानिक ने मिश्रण को एक टिन की शीट पर फैलाया और एक छवि को कैप्चर करने के लिए एक कैमरा 'ओबस्क्युरा' का उपयोग किया था। उस काल में इस प्रक्रिया को "हेलियोग्राफी सन राइटिंग" कहा गया था। यह फोटोग्राफी की प्राथमिक आधारशिला थी।

1830 में फ्रांस से इसकी शुरुआत होती है। ग्रीक शब्द फोटो (लाइट) और ग्रैफिन (ड्रा करने के लिए) से फोटोग्राफ या फोटोग्राफी शब्द बना था। जो पहली बार 1830 के दशक में इस्तेमाल किया गया था। ब्रिटिश आविष्कारक 'फॉक्स टैलबोट' ने 1834 में कैमरे के बिना प्रकाश-संवेदनशील सिल्वर क्लोराइड से ब्रश किए गए कागज पर वस्तुओं को रखकर अपनी पहली सफल फोटोग्राफिक छवियों का निर्माण किया था।

कैमरे से ली गई दुनिया की सबसे पहली तस्वीर 1826 में 'जोसफ़ निसेफोर निएप्स' (Joseph Nicéphore Niépce) ने ली थी। जोसफ़ निसेफर ने कैमरे में बनने वाले चित्र के लिए साधारण कागज की बजाए सिल्वर क्लोराइड (AgCl) की लेप चढ़े कागज का इस्तेमाल किया। वह चित्र सिल्वर क्लोराइड लगे कागज पर स्थायी रूप से अंकित हुआ और इस तरह दुनिया में पहली बार फोटो को स्थायी रूप से कागज पर प्राप्त करने की तकनीक का आरम्भ हुआ।

सिल्वर क्लोराइड (AgCl) एक फोटो सेंसिटिव केमिकल है। जिसपर रोशनी की किरण पड़ने से एक खास तरीके से फोटो-केमिकल रिएक्शन होता है। जिसकी मदद से तस्वीर बनती है। इस तरह, निप्स ने फोटो को स्थायी रूप से कागज पर प्राप्त कर व्यावहारिक फोटोग्राफी की नींव डाली। उन्होंने अपनी फोटोग्राफिक प्रॉसेस को हीलियोग्राफी (Heliography) नाम दिया था। इस तरह के प्रथम फोटोग्राफ को 'ले ग्रास में खिड़की से बाहर का दृश्य' (View out of the window in Le Gras) शीर्षक दिया गया।

निसेफोर और डागुएरे ने सम्मिलित रूप से फोटोग्राफ बनाने का प्रयोग आरम्भ किया था। लेकिन 1833 में निसेफोर की मृत्यु हो गयी। डागुएरे ने प्रयोग जारी रखा। चाँदी की परत चढ़ी तांबे की पतली प्लेट को आयोडीन की वाष्प पर रखा गया। जिससे उस प्लेट पर 'सिल्वर आयोडीन' की एक हल्की कोटिंग हो गयी। इसे प्रकाश में रखा गया। फोटोग्राफ बनाने के लिए आरम्भ में इसे बहुत समय के लिए प्रकाश के सम्पर्क में रखना पड़ता था। लेकिन डागुएरे ने खोज की, यदि कम समय के लिए इसे प्रकाश के सम्पर्क(एक्सपोज़र) में लाया जाय तो जो धुंधली और अस्पष्ट छवि बनती है, उसे कुछ रासायनिक प्रक्रिया से डेवलप किया जा सकता है। यदि इस प्लेट को मर्करी की 75° सेल्सियस तक गर्म की गयी भाप के सम्पर्क में रखा जाये और जिस हिस्से में तस्वीर ना हो उसे 'सोडियम थियो सल्फेट' से धो दिया जाय तो धुँधली तस्वीर स्पष्ट हो जाती है। इस पूरी पद्धति को 'डागुएरियोटाइप' का नाम दिया गया था।

इस विधि से 1838 में खींची और डेवलप की गयी तस्वीर का शीर्षक है, 'पेरिस के बुलेवार्ड डु मंदिर का दृश्य' (View of the Boulevard du Temple)। इस पूरी प्रक्रिया को डागुएरेरोटाइप कहा जाता था, अतः उसके बनाए हुए फोटोग्राफ को 'डैगियरटाइप' छवियाँ कहा गया। इसके बाद 'कोलोडियन मेथड' (Collodion Method) का दौर आया। जिसका आविष्कार इंग्लैंड के फ्रेडरिख स्कॉट आर्चर ने किया और बच्चों के लिए साहित्य लिखने वाले 'लेविस कैरोल' ने इस विधि से अनेक फोटो तैयार किए। इस विधि में फोटो-सेंसिटिव मैटीरियल को गीले चिपचिपे रूप में इस्तेमाल किया जाता था। इसलिए इसे 'Collodion Wet Plate Process' कहा गया। यह फोटो-नेगेटिव का उस जमाने के हिसाब से सुधरा हुआ रूप था।

फोटोग्राफी की विधियां 19वीं शताब्दी (1800s) तक लोकप्रिय नहीं हो पाई थीं। 20वीं शताब्दी (1900s) की शुरुआत तक अपनी जटिल और लंबी प्रक्रियाओं के कारण यह आम लोगों के वश के बाहर थी। फोटोग्राफी सिर्फ अनुसंधानों के लिए होती थी। फोटोग्राफी पहले डिगेरोटाइप कही जाती थी। 1800 से 1850 तक फोटो लेना आसान नहीं था। 1850 में 'इमल्शन प्लेट' आने पर छवि को फोटो के रूप में उतारना कुछ आसान हो गया था। 1870 में ड्राई प्लेट्स आयी थीं जिन्होंने फोटोग्राफी की आधुनिक के करीब की तकनीकी दिखाई थी.

1880 में जब 'कोडक' (Kodak) कंपनी आयी थी। 'जॉर्ज ईस्टमैन' ने यह कंपनी बनाई थी। इससे पहले फोटोग्राफी बस धनिक प्रोफेशनल्स का शगल था। यह कैमरा एक बॉक्स कमरा था जो रील के साथ फैक्ट्री में जाता था। वहाँ पर फ़िल्म धुल कर आती थी पर कैमरा शहीद हो जाता था। लेकिन 20वीं शताब्दी फोटोग्राफी में क्रांति का दौर लेकर आई। जब अमेरिका के जॉर्ज ईस्टमैन ने Eastman Kodak कंपनी बनायी। यहाँ पर छोटे और हल्के फोटोग्राफी रील वाले Kodak कैमरे बनाने शुरू हुए। सन 1900 में Kodak के Brownie Box Camera ने फोटोग्राफी की दुनिया में उस जमाने के हिसाब से क्रांति कर दी।

हम अपने पुराने फिल्म-रील वाले कैमरों में जो रील (Reel) लगाया करते थे उसका आविष्कार इसी Eastman Kodak ने किया था। उस ज़माने की जनता को याद होगा कि जब पिक्चर देखने जाते थे तो उस पर 'ईस्टमैन कलर' प्रमुखता से लिखा होता था। फिर बाजार में 'लीका' (Leica) और 'आर्गस' जैसी कैमरा बनाने वाली दूसरी कंपनियां भी आ गईं। यह था श्वेत-श्याम यानी 'ब्लैक & व्हाइट' फोटो का जमाना। लेकिन फिर जल्द ही 1935 में कोडक (Kodak) ने अपनी कोडाक्रोम (Kodachrome) कलर फिल्म पेश की। इसी के साथ रंगीन यानी 'कलर फोटो' युग की शुरुआत हुई। पहले दो लेंस के कैमरे आते थे। जिन्हें 'एम एण्ड शूट (Aim and Shoot)' कहते थे। कैमरे के ऊपरी हिस्से में एक लेंस से फोटोग्राफर दृश्य को उस अनुपात में देख सकता था लगभग जैसा फोटोग्राफ़ आने वाला होता था। फोटो कैमरे के सामने लगे कैमरे से आती थी। यानी कैमरे की रील पर प्रकाश की किरणें कैमरे के सामने लगे हुए लेंस से आती थीं। इस कारण जैसा हम ऊपरी लेंस में देख कर फोटो का अनुमान लगाते थे। असली फोटो उससे भिन्न आती थी। इस समस्या का समाधान सिंगल लेन्स कैमरों ने किया। इन कैमरों को एस.एल.आर {Single-Lens Reflex (SLR)} कहते थे। इसमें जो दृश्य दिखता था वही फोटोग्राफ में आता था। अब एक बार तकनीक विकसित होने लगी तो लेंसों में लगातार सुधार होते गए। सुविधाएं और फीचर्स जुड़ते गए। अब कैमरे में रील, लोड करने और फिर डार्क-रूम में नेगेटिव से फोटो तैयार करने की बाध्यता खत्म हो गई। डिजिटल कैमरों के साथ-साथ डेस्कटॉप/लैपटॉप कंप्यूटरों के सुलभ हो जाने से हर किसी के लिए फोटोग्राफर बन जाना संभव हो गया। इसके बाद स्मार्ट फोन आये। अब तो फोटोग्राफी इतनी सुलभ हो गयी कि जितनी इच्छा हो फोटो खींचिये, मिटाइए, ना तो खर्च बढ़ता है ना बोझ बढ़ता है। पहले मजबूरी थी फोटो किसी दूसरे की खींचनी पड़ती थी। अपनी फोटो खिंचवाने के लिए कैमरा दूसरे के हाथ में देना पड़ता था। इसलिये अपनी फोटो की खूबसूरती से मन नहीं भरता था। लोगों के आत्म-प्रेम को वैज्ञानिकों ने भाँप लिया। आत्मप्रेमी जनहिताय सेल्फ़ी लेन्स का आविष्कार किया। इससे आप ख़ुद की ही फोटो खींच सकते हैं। फ़ेसबुक, ह्वाट्सऐप और इंस्टा पर भेज सकते हैं। फोटो एडिटिंग भी विकसित हुई है। काले को गोरा, गोरे को काला कर सकते हैं। होठों को लाल और आँखों को सुरमई कर सकते हैं। जैसा आप दिखना चाहें वैसे खूबसूरत दिख सकते हैं।

जून 2023

नटराज मंच

हम याद बहुत आएंगे
भारतेंदु बाबू को समर्पित

आदरणीया चित्रा मोहन जी प्रख्यात व वरिष्ठ रंगमंच निर्देशिका व प्रवक्ता हैं । आप भारतेंदु नाट्य अकादमी से सम्बद्ध रही हैं । "हम याद बहुत आएंगे" महान नाट्यकार व आधुनिक हिंदी के प्रणेता भारतेंदु बाबू को समर्पित आपका मौलिक नाटक है । नाट्य-कला को समर्पित वीथिका के इस मंच पर यह अद्भुत, संगीतमयी नाटक आप पाठकों के सम्मुख है ।

हम याद बहुत आएंगे
भारतेंदु बाबू को समर्पित

मौलिक नाटक

लेखिका- चित्रा मोहन

अंक - 1

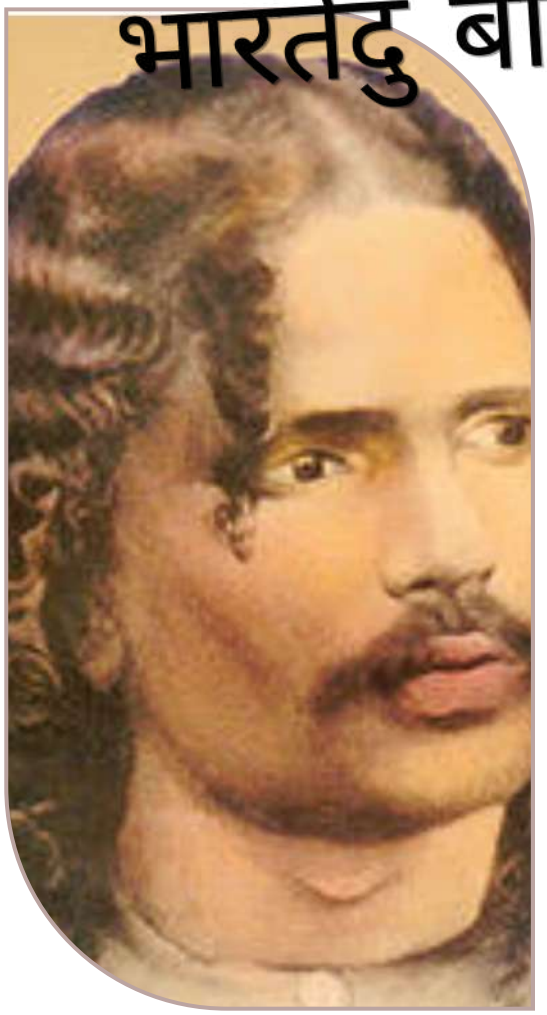

पात्र परिचय

भारतेंदु बाबू उम्र (समयानुसार 28 से 35 वर्ष तक)
लड़की -1- कोरस (नयना)
इशिता - 26 साल (ये भी दृश्यानुसार मन्नो देवी की भूमिका में भी)
चौबे पंडा: उम्र - 50
कोरस: 5 से 6 जनों का
मन्नो देवी: (रुक्मिणी/ललिता की भूमिका)
मल्लिका: (चंद्रावली / राधा)
लड़की - 2 - (सुमुखि) कोरस - (शोहदा, लाला, सोहा आदि कोरस से ही भूमिकाएं करेंगे)

(मंच पर प्रकाश आता है। भारतेंदु जी की भव्य मूर्ति दिखाई पड़ती है। पार्श्व संगीत के साथ ताल दादरा में कृष्णा, राधिका और अन्य चार सखियां नृत्य करती नज़र आती हैं।)

गीत (दादरा)
सैंया बेदरदी, दरद नहीं जाने
प्रान दिये, बदनाम भये पर नेक प्रीति नहीं माने,
हरीचंद्र अलगरजी प्यारा
दया नहीं जिए आने
सैंया बेदरदी दरद नहीं जाने

(गीत-नृत्य के साथ मूर्ति के पीछे युवा भारतेंदु निकल कर सामने आते हैं, नृत्य का कोरस मूर्ति के पीछे जाकर- फ्रीज़ हो जाता है।)

भारतेंदु: सुना है, जुमाना हमें खूब पहचानता है। हम आज भी लोगों में शेष बचे हैं किंतु प्रश्न यही है कि किनकी याद में ? आज हमें पढ़ता है कोई ? पाठ्यक्रम में संभवतः शेष बचे हों हम, अथवा किसी संस्थान के नाम में हमारा अवशेष उपस्थित हो । लोग भारतेंदु - भारतेंदु करते होंगे - संस्थान के नाम से जोड़ कर पुकारते होंगे पर ये भारतेन्दु यानि हम थे कौन ? हमारे कहने का तात्पर्य ये है कि हम हैं कौन ? भयी हमने तो अपने मुँह पर ही अपनी खूब निंदा सुनी है
(तभी मूर्ति के पीछे फ्रीज कोरस में से एक लड़की सामने आकर पूछती है)
लड़की -1: अरे बाबू जी, आज क्या हो गया है ? ये कौन सी बेसुरी तान छेड़ दी आपने ? हम सब तो हमेशा की तरह आपके कहने पर नाटक खेलने आये थे, आपका लिखा गीत, दादरा में पिरो कर प्रस्तुत भी किया।अब आपको अपने संवाद बोलने थे, आप जाने क्या अनर्गल प्रलाप करने लगे। ये तो अच्छा है कि पूर्वाभ्यास चल रहा है, यदि दर्शकगण उपस्थित होते तो हमारी कितनी निंदा करते, कितनी भर्त्सना करते ?

भारतेंदु: भर्त्सना और निंदा तो हमारी होती ही है, चाहे हम कितना अच्छा करें
(एक पल रुकते हैं और कवित्त गाते हैं, कवित्त गाते वक्त पीछे से चौबे पंडा आते हैं)

भारतेंदु (गाते हुए)
(राग पीलू)

सजन तोरी हो मुख देखे की प्रीत
'तुम अपने जोबन मदमाते,
कठिन विरह की रीत।
जहाँ मिलत हंस- हंस बोलत,
गावत रस के गीत
हरीचंद घर-घर के भौंरा
तुम मतलब के मीत

(कोरस वाह-वाह कर तालियां बजाता है - वाह बाबूजी क्या खूब कवित्त बनाया है।)
चौबे पंडा: (मुँह बिचका कर, तम्बाकू खाते हुए) - अरे कवित्त इनके बापौ बनावत रहें, मुला, कवित्त बनाना, नाचना गाना, नाटक नौटंकी करना भले लोगन का काम थोड़े ही है।
लड़की- 2: चौबे जी, ये आप क्या बोले जा रहे हैं? बाबू जी के बारे में आप जानते ही क्या हैं?
चौबे पंडा: अरे हमारी छोड़ो, पूरी कासी, बनारस की गली- गली में इनहिन की चर्चा है। ई तुम्हारे बाबू जी जो गुल खिलाय रहे हैं वहिकी खबर पूरे कासी में फैल गई है।
भारतेंदु: चौबे जी आपको हमसे नाइत्तेफाकी है तो सीधे-सीधे बताइये, ये घुमा फिरा कर बातें बनाना, हमारी तौहीन करना, ये हमें गवारा नहीं।
चौबे पंडा: 'देखो - देखो - यही म्लेच्छन की भासा बोल-बोल के आपन कुल धरम का सत्यनास किये हैं।
भारतेंदु:(हँसते हैं) अच्छा तो ये बात है। विप्रवर। अहोभाग्य हमारे। आज मध्यान्ह काल में भास्करदेव की प्रचंड किरणों से तप्त इस नाट्य - प्रांगण में आपका पदार्पण हुआ और आपके मुखकमल से प्रवाहित अमृत मयी वाणी का रसपान कर हम सभी कृतार्थ हुये। यदि आपका मनोरथ पूर्ण हो गया हो तो आप निज गंतव्य की ओर प्रस्थान करने की कृपा करें।
(चौबे का सर भन्ना जाता है वो घबरा कर अपनी धोती, डंडा, रामनामी ठीक करके वहां से खिसक लेता है)
चौबे पंडा: छी-छी ये सब कुलबोरन हमको जाने किस बोली में गरिया रहे हैं, अभी तो हम जाय रहे लेकिन इस अपमान को भूलेंगे नहीं।
(अपनी धोती में उलझ कर गिर पड़ते हैं, कोरस ठहाका लगाता है)
अरे सत्यानास हो तुम सबका, हमारी कासी में ऐसी अंधेरगर्दी?
भारतेंदु: देखी तुम्हारी कासी लोगों देखी तुम्हारी कासी ॥
लोग निकम्मे मंजी गंजड़ लुच्चे बे-विसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे, बेफिकरे बदमासी
आप काम कुछ कभी करें नहि कोरे रहें उपासी
और करे तो हंसे बनावें, उसको सत्यानासी।

(चौबे खिसिया कर भागता है, कोरस सामने आकर बैठता है, भारतेंदु पास रखे चौकी नुमा स्टूल पर बैठ जाते हैं)
भारतेंदु: हम जानते हैं आप सब हमारे साथ नाटक खेलने आए हैं। पूर्वाभ्यास भी आरंभ हो चुका है किन्तु हम आलेख को लेकर थोड़ा परेशान हैं,समझ ही नहीं आ रहा क्या करें? जीवन दोराहे पर आकर खड़ा हो गया है। समझ नहीं आता क्या करें ? किधर जाए ?

कोरस व्यक्ति 1:बाबूजी! आप तो इतने गुणी, नीर-क्षीर विवेकी हैं

कोरस व्यक्ति 2: बाबूजी! छोटे मुँह बड़ी बात होगी पर कहे बगैर जी नही मानता, देखिये हम सब एक ही परिवार के हैं। रंगमंच से जुड़ कर नाटक खेलने वाले सब एक ही रंग परिवार हुए कि नहीं ?

शेष सब: बिल्कुल हुए। हम सब एक ही परिवार हैं बाबू जी। आप इस परिवार के मुखिया, हमारे सिरमौर हैं।

कोरस व्यक्ति 4: बाबू जी आपके मन में का है, हम नहीं जानते। लेकिन इतना अवश्य जानते हैं कि यदि आप हमसे साझा करेंगे तो आपका जी हल्का हो जाएगा।

भारतेंदु: आपकी बातों पर हमे पूरा यकीन है। दरअसल एक नये नाट्य आलेख की रूप रेखा में उलझे हुए हैं हम। मेरा मानना है लेखन सार्वभौमिक मनोभावों और अंतर्मन के द्वन्द्वों को जितनी गहराई से अभिव्यक्त करे उतना ही सर्वग्राही होता है, विषय चाहे सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक अथवा व्यक्तिगत ही क्यों न हो।

लड़की -2: बाबू जी आपकी बात सोलहो आना खरी है किंतु आपके मन में किस विषय को लेकर अंतर्द्वंद चल रहा है।
यदि उचित समझे तो अवश्य स्पष्ट करें।

भारतेन्दु: सुमुखी! तुम बहुत चतुर हो। मेरे मन की बात निकलवा कर हमारी जग हँसाई कराना चाहती हो ? (हंसते हैं)

सुमुखी: राम-राम बाबूजी, भला मैं ऐसी धृष्टता कैसे कर सकती हूं ?

भारतेंदु:अरे नहीं-नहीं। मैं परिहास कर रहा था। वास्तविकता तो यही है कि, समझ ही नहीं पा रहा, क्या नाटक खेलें क्या न खेलें ? मेरा जीवन केवल साहित्य को समर्पित रहा। नाटकों में मेरे प्राण बसते हैं किंतु लोक जगत-व्यवहार में इसे हेय दृष्टि से देखा जाता। मैं कितना ही प्रयास करूँ, प्रेम की टकसाल खड़ी कर दूँ किंतु लोगों को मेरी निन्दा करने में ही रस मिलता है।

कोरस व्यक्ति-3: मित्र। आपको इनसे क्या लेना देना ? व्यर्थ इतनी क्यों चिंता करते हैं? प्रेमी लोग सब तेरे हैं, तेरी चिंता करते हैं, तुम उनका सर्वस्व हो वे जहाँ रहते है तुम्हारा नाम आदर से लेते हैं।

कोरस व्यक्ति-3– मित्र, हम तुम्हारे रहन सहन, तुम्हारी जीवन पद्धति को समझते है।तुम तो दूसरों की निंदा और अपना किया उपकार तक भुला देते हो।इन छोटे-मोटे लोगों की निंदा से तुम अपना मन क्यों दुखी करते हो? याद रखो मित्र कि ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोक वहिष्कृत होकर भी इनके सर पर पैर रख कर निर्भय विहार करोगे।

भारतेंदु: आपनी बातों से राहत तो मिली कि मेरे प्रशंसक और प्रेम करने वालों की भी कभी नहीं है लेकिन निंदा से मन आहत तो होता ही है। ये भी जानता हूं कि मेरे बाद(एक अल्प विराम लेकर बोलते हैं) कहेंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे,प्यारे हरिचंद की कहानी रह जायेगी।

लड़की: आपकी कहानी तो बरसों नही युगों-यगों तक याद की जाएगी। आपको भारतेंदु की उपाधि ऐसे ही सेंत मेंत में तो मिली नहीं है। चलिए बाबू जी, आज के पूर्वाभ्यास के लिए अपने आलेख की प्रस्तुति कीजिए। 'देखें' हमारा नया नाटक क्या रंग लाता है ?

भारतेन्दु: बहुत अच्छी बात है। मैं आरंभ करता हूं, आप सब यथावत अपनी भूमिकाओं' के अनुसार मंच पर स्थान लेते रहियेगा जहाँ-जहाँ मेरी आवश्यकता होगी मैं अपनी भूमिका स्वयं निभाऊँगा, तो अब चलें पूर्वाभास आरम्भ करें।

(मंच पर तीन आवर्तन पूजा वाली घंटी के बजते हैं, धीरे-धीरे प्रकाश लुप्त होता है)

(क्रमशः अगले अंक में .....)

कहाँ गये वो गाँव

मनोज कुमार सिंह प्रवक्ता

वरिष्ठ साहित्यकार/ उप सम्पादक कर्मश्री मासिक पत्रिका

अत्यंत प्राचीन काल से अंग्रेजों के आगमन तक अपनी सादगी, साफगोई, भोलापन और अपनी भलमनसाहत के लिए साहित्यिक कृतियों में बहुचर्चित और सुविख्यात हमारे गाँव हमारे देश की हर शासन व्यवस्था की मौलिक, प्राथमिक तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर इकाई रहे हैं। इसका अपवाद पश्चिमोत्तर भारत में सिंधु और रावी नदी के तट पर सुविकसित अबसे साढे चार हजार साल पुरानी कांस्ययुगीन सिंधु घाटी सभ्यता रही हैं जो पूर्णतः नगरीय सभ्यता थी। हालांकि इसकी उत्तरवर्ती वैदिक सभ्यता पूरी तरह से ग्रामींण सभ्यता थी। यह ध्यान में रहे कि पूर्णतः ग्रामींण सभ्यता और संस्कृति के रूप विख्यात वैदिक काल में ही भारतीय ज्ञान विज्ञान और आध्यात्म के महान ग्रंथों वेदो,अरण्यकों और भारतीय आध्यात्मिकता, तार्किकता, दार्शनिकता और बौद्धिकता की पराकाष्ठा को स्पर्श करने वाले उपनिषदों की रचना की गई।

वैदिक काल से लेकर मुगलों के शासनकाल तक लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारतीय शासकों के समय लगभग समस्त भारतीय गाँव शासन व्यवस्था की प्राथमिक, मौलिक और अक्षुण्ण ईकाई रहे हैं। उत्तर भारत की तरह सुदूर दक्षिण भारत में चोल, चालुक्य और चेर राजाओं ने अपनी शासन व्यवस्था में आम लोगों को बेहतर सुविधाएं सुनिश्चित करने एवं ग्रामीण जन-जीवन में उन्नति और समृद्धि लाने के लिए उत्तम ग्रामींण शासन व्यवस्था का प्रबंधन किया था। वर्तमान दौर के मंत्रिपरिषदों की तर्ज पर ग्रामींण स्तर पर विभिन्न कार्यों को सुव्यवस्थित और सुचारू रूप से सम्पन्न और संचालित करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया था। समितियों के माध्यम से दक्षिण भारतीय शासकों ने सर्वश्रेष्ठ ग्रामींण शासन व्यवस्था सुनिश्चित करने का प्रयास किया था।

इतिहासकार मेगास्थनीज की प्रसिद्ध पुस्तक इण्डिका में उत्तर भारत के विशेष रूप से मगध साम्राज्य के गाँवों में पाई जाने वाली उत्तम ग्रामीण शासन व्यवस्था के साथ-साथ उत्तम उन्नत और समृद्ध ग्रामींण जन-जीवन का उल्लेख मिलता है। इण्डिका में मगध साम्राज्य की उन्नति और समृद्धि के साथ-साथ उत्कृष्ट साहित्यिक और सांस्कृतिक हलचलों का भी पता चलता है। इस प्रकार ऐतिहासिक अवलोकन से पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत में हर प्रकार की शासन प्रणालियों में उत्तम ग्रामींण शासन व्यवस्था पाई जाती रही हैं।

हमारी शासन व्यवस्था की मौलिक, स्वाभाविक और प्राथमिक ईकाई रहे गाँव बढते आधुनिकीकरण, तकनीकीकरण, शहरीकरण और पाश्चात्यीकरण के कारण अपनी मौलिक, स्वाभाविक, प्राकृतिक और स्वतंत्र पहचान खोते जा रहे हैं । आपसी सहयोग,सहकार, समन्वय, साहचर्य, सामंजस्य और सदियों से हमारे चलन-कलन का हिस्सा रही संयुक्त परिवार प्रणाली के माध्यम जीवन-जीने के आदती ग्रामींण लोकजीवन में अब एकाकी परिवार प्रणाली और एकाकी जीवन शैली तेजी से आगे बढने लगीं हैं।

मंहगाई, तकनीकी प्रगति के साथ लम्बी होती आवश्यकताओं की सूची, टेलीविजन के प्रति उफनता प्रेम और एक हजार चैनलों द्वारा लगातार परोसे जाने वाले कार्यक्रमों तथा सूचना संचार के अत्याधुनिक संसाधनों और सोशल मीडिया के औजारों ने घर की चहारदीवारी के अन्दर रहने वाले सदस्यों को भी कठोरता से अलगाव का शिकार बना दिया है और ये एक ही छत के नीचे गुजर बसर करने वाले एकाकी जीवन शैली की तरफ तेजी से आगे बढ रहे हैं। गावों में सदियों से प्रचलित समूहगत और सामूहिक जीवन पद्धति विलुप्त होती जा रही है। आधुनिकीकरण, तकनीकीकरण, शहरीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों के दुरूपयोग ने गाँवों की आपसदारी को न केवल तहस-नहस किया हैं बल्कि आधुनिकता की इस अंधी दौड़-भाग ने गाँवों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक रूप से प्रदूषित और कुपोषित किया है। तोता, मैना, कोयल, बुलबुल, गौरेय्या और कौवे की बोलियाँ सुनने के लिए आज हम तरस जाते हैं इसके साथ ही साथ गाँवों के पर्यावरण और आबो-हवा में स्पष्ट बदलाव देखने को मिल सकता हैं ।

सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों का बुलेट ट्रेन की रफ्तार से बढता प्रयोग और हाइटेक होते जन जीवन ने गाँवो में मोबाइल कम्पनियों के टावरों की संख्या बढा दी है। इन टावरों की तरंगों ने तमाम चहचहाती पक्षियों की जान ले ली। अंग्रेजो के आगमन के पूर्व भारतीय गाँव अपनी सहज, सरल आवश्यकताओं के लिए पूरी तरह आत्मनिर्भर थे। अग्रेंजो ने भारतीय ग्रामींण अर्थतंत्र और अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ रहे भारतीय लोगों की बहुविवीध हुनरमंददस्तकारी, परम्परागत कुशल, शिल्पकारी और हुनर और हाथों की जादूगरी से लबरेज़ हस्तकला को छिन्न-भिन्न कर दिया । अंग्रेजों ने अपनी कुत्सित, घृणित, निर्लज्ज और निर्मम साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में भारतीय गाँवों के साथ-साथ सम्पूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश साम्राज्य की पूरक,अनुषंगी और पराश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में स्थाई रूप से बदल दिया। स्वाधीनता उपरांत भारतीय गाँवों को फिर से आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर अनगिनत प्रयास किए गए परन्तु तमाम प्रयासों और प्रयत्नों के बावजूद आज भी हमारे गाँव राजधानियों और चमचमाते शहरों की अनुषंगी पूरक और पराश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में जीने के लिए अभिशप्त है।

चमचमाती, बहुरंगी रोशनी से जगमगाते शहरों के लिए आवश्यक अनाज, फल, दूध-सब्जी और अपने हाथों में हर तरह की कारीगरी का कौशल लिए मेहनतकश मजदूरों की फौज गाँव ही मुहैया कराते हैं। शहरों और राजधानियों को चमकाने के लिए सारा संसाधन उपलब्ध कराने वाले गाँव आज बदहाली और बदत्तरी के शिकार हैं। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक रूप से कुपोषण के शिकार गाँवों में जब तक खुशहाली नहीं आयेगी तब तक भारत में खुशहाली नहीं आयेगी। पढाई, कमाई और दवाई के लिए ग्रामीण लोगों का शहरों की तरफ पलायन गाँवो की बदहाली और बदत्तरी का जीवंत दस्तावेज है। इसलिए गाँवों के प्रति सुहृदयता दिखाते हुए गाँवों के स्वाभाविक विकास के लिए सरकारों को ठोस कदम उठाने होंगे। गावों में गुजर-बसर करने वाले लोगों की आजीविका का साधन आज भी खेती-किसानी और खेती-किसानी पर आधारित लघु कुटीर उद्योग हैं। इसलिए खेती-किसानी को लाभकारी स्थिति में पहुँचाने के लिए व्यवसायिक स्वरूप प्रदान किया जाय, लघु कुटीर उद्योगो को विकसित किया जाये तो आज फिर से गांव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकते हैं ।

गौरेय्या, बुलबुल, मैना, तोता और कोयल के सुमधुर कर्णप्रिय और संगीतमयी शोर से अनुगूँजित गाँवों को फिर से सुसज्जित करने के लिए गांवों की प्राकृतिक और स्वाभाविक बुनावट और सजावट की तरफ लौटना होगा। गावों में फिर से साक्षात सहकारी और जिन्दा संवाद कायम कर गाँवों की मौलिक पहचान फिर से वापस लायी जा सकती हैं।

बाजारवादी चकाचौंध और लगातार विज्ञापनो के शोर ने गवंई शरबत, गंवई मिठाईयों और गंवई व्यंजनों की सुगंध और स्वाद को न केवल क्रूरता से कुचल दिया है बल्कि हमारे खान पान की पौष्टिक और प्रचलित परम्परा से हमको बहुत दूर कर दिया हैं। गुड़-भेली से तरह तरह की बनी मिठाईयों, खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थो का स्थान पेप्सी कोका-कोला जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पेय पदार्थों और खाद्य पदार्थों ने ले लिया है। इसलिए भारतीय गाँवों की मौलिक पहचान पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। जनमानस में गंगा को बचाने के लिए जो तड़प और बेचैनी पाई जाती है उसी तरह की तड़प और बेचैनी गाँवों को बचाने के लिए जनमानस के हृदय में पैदा करने की आवश्यकता है।

वागामोन, केरला

JASID AS

जासिद एस केरल के युवा फोटोग्राफर हैं । ये मनोहारी चित्र न केवल उनकी फोटोग्राफी की कला, बल्कि प्रकृति से जुडी उनकी यायावरी दृष्टि का भी परिचय देती हैं । अपने पर्यटन के दौरान उन्होंने खुबसूरत वागामोन की पहाड़ियों, पुल्लू, चेय्पारा के रमणीय स्थलों, तथा थ्रिस्सुर के मंदिर के चित्र भी अपने कैमरे में कैद किये हैं ।
आप जैस को इन्स्टाग्राम पर CAMERA CRUSH (@the_cameracrush) आईडी पर फॉलो भी कर सकते हैं ।
आईये इन चित्रों के द्वारा वागामोन की वीथिकाओं को निहारते हैं ।

न्याय की जन संवादशीलता

एडवोकेट सत्यप्रकाश सिंह

विगत कुछ दिन पूर्व माननीय उच्चतम न्यायालय के सम्मानित मुख्य न्यायाधीश ने एक न्याय व्यवस्था से जुड़े समारोह में न्याय की भाषा पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि, "आमजन के लिए अर्थात जनसामान्य के लिए जन सहज व प्रचलित भाषा में न्यायिक कार्यवाही का सम्पादन एवं न्याय-निर्णयन से न्यायालय एवं कानून व्यवस्था के प्रति विश्वास एवं जनस्वीकार्यता में वृद्धि होगी। न्यायालाय में आने वाला व्यक्ति अपने प्रकरण में प्रत्येक अग्रेसर कार्यवाही को समझने में समर्थ होगा तथा न्याय व्यवस्था में उत्पन्न होती अनेक समस्याओं का निदान संभव होगा।"

माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय का उक्त विचार इस भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था में "कानून का शासन" स्थापित करने तथा उसके प्रति विश्वास अक्षुण्ण रखने में पूरे मनोरथ से जिन पर इसको लागू कराने का दायित्व है, उन्हें कर्तव्यबोध से सचेत करने का प्रयास है। भारतीय स्वातंत्र्य के करीब छिहत्तर वर्षों में आज भी जनसामान्य को उसकी भाषा में शीर्ष न्यायालयों का न्याय सुलभ नहीं है। संविधान के नियमानुसार उच्च व उच्चतम न्यायालय की न्याय की भाषा अंग्रेजी है। कुछ प्रान्तों में प्रादेशिक भाषाओं को न्याय की भाषा बनाने का उपक्रम किया गया है। फिर भी अधिसंख्य निर्णय अंग्रेजी भाषा में ही प्रसारित हो रहे हैं। यद्यपि संसद जो देश की आम जनता का प्रतिनिधित्व करती है संवैधानिक रूप से जन आकांक्षा के अनुरूप परिवर्तन करने हेतु अनुच्छेद 348 (2) के अनुसार सशक्त है। परन्तु राजनीतिक विरोध व जनसंवेदनशीलता के अभाव के चलते न्याय की भाषा जनभाषा नहीं हो पा रही है। आज के व्यवसायिक युग में जहाँ अत्याधुनिक तकनीकियों का विकास अनवरत हो रहा है, एक साथ अनेकानेक भाषानुवाद सहज सुलभ है। माननीय न्यायाधीश के उक्त उद्गार से शीर्ष-यायाल के निर्णय भी आम व्यक्ति को उसकी भाषा में मिल सकेगा। आने वाले समय में न्यायिक प्रक्रिया के संचालन में जनसम्पर्क भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालयों मे उचित स्थान पायेगा। इससे न्यायाधीशगण व अधिवक्तागण भी प्रेरित होंगे। आज अपने ही हित में प्रस्तुत वाद की जानकारी प्राप्त करने में भी आम जन असमर्थ है। इसके प्रयोग से वह अपना सहयोग दे पाने में समर्थ होगा तथा इस न्यायिक व्यवस्था में अधिवक्ता एवं न्यायालय से उचित पूछताछ कर सकेगा।

आमजन की भाषा में न्याय होने से निश्चित ही माननीय न्यायालय व जनमानस के बीच संवाद स्थापित व आमजन के हितों की रक्षा और बेहतर ढंग से हो सकेगी।

पिताजी के मुंह से पिताजी की बातें

हमारे ननिहाल में एक थे हरखू भैया, बेचारे भोले-भाले हरखू और कड़कदार मिर्ची की तरह तीखी उनकी घरवाली। हरखू भाई के समधी आने वाले थे तो खुब अच्छी-अच्छी मोटी लिट्टी, लहसुन-मिर्ची की चटनी और हमारे ननिहाल से गये दही का बढ़िया माठा तैयार हुआ चकाचक ।

अब भैया दोनों समधी जी आंगन से सटे ओसारे में पीढा पर बैठे, हंसी-मजाक-ठट्ठा में भोजन शुरु हुआ तब तक घरवाली ने बुलाकर धीरे से हरखू जी को समझाया कि तीन ही मोटी लिट्टी बनाई हूं । वैसे तो पेट भर ही जाएगा समधी जी का लेकिन मर्यादा के अनुसार मैं दूसरी लिट्टी के लिए पुछूंगी तो आप पहले ही नहीं-नहीं कह दीजिएगा तो आपका सुनकर वो भी मना कर देंगे तो तीसरी मैं खा लूंगी । बेचारे हरखू भैया ने आंख के इशारे पर दूसरी लिट्टी की बात आते ही मना तो करना चाहा पर हिम्मत नहीं हो सकी बोले, “लाओ आधी दे ही दो समधी को”, अब समधी जी पीछे क्यों रहते अपनी वाली हरखू को दे दी,मजबूरी में बची आधी समधी जी की थाली में ।

अब आगे देखिए पत्नी बुरी तरह नाराज तो थी ही बोली सुनो समधी जी को दुआर पर सुलाना,खुली हवा लगेगी और तुम छत पर सोना । .हरखू ने जिद करके समधी जी को दुआर पर सुला दिया, अब भैया आधी रात को जब मच्छर ने काटना शुरु किया तो समधी जी छत पर पहुंचे और हरखू को नीचे भेज दिया । छत पर ठंडी हवा में जैसे ही आंख लगी थी तब तक समधी जी के ऊपर ले झाड़ू-दे झाड़ू की पिटाई शुरु हुई,समधी जी बाप-बाप चिल्लाते हुए नीचे भागे और उनको देखकर समधिन घर में भागीं ।

जगह बदल जाने से लिट्टी का गुस्सा हरखू की जगह समधी जी पर उतर गया और समधी जी उसी वक्त अपने गांव निकल लिए । अब आगे आप समझदार हैं ही .....

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस

दीपाली पाण्डेय
SOC Analyst at WIPRO

21वीं सदी सूचना व तेज़ी से विकसित होती तकनीकी की सदी है । मनुष्य प्रतिदिन अपने ही कल के सीखे हुए ज्ञान को खुल कर चुनौती दे रहा है । मानव-बुद्धि उसके द्वारा सीखी व अनुभव की गयी सूचना को उसे उपयोग करना सिखाती है । ऐसे तेज़ गति की स्पर्धा में मनुष्य अब अपने मष्तिष्क को अपने ही द्वारा बनायीं गयी मशीनों, विशेष व प्राथमिक रूप में कंप्यूटर से मिलाते हुए ज्ञान व् सूचना के संसार में एक क्रांतिकारी बदलाव करने जा रहा है । यही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का प्रथम रूप है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस दुनिया को विभिन्न क्षेत्रों में बदल रहा है, यह उद्योगों में तेजी से बदलाव ला रहा है और कई तरीकों से हमारे जीवन में सुधार कर रहा है। हाल के वर्षों में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने अभूतपूर्व वृद्धि देखी है, जो मशीन लर्निंग, बिग डेटा एनालिटिक्स और कंप्यूटिंग शक्ति में प्रगति से प्रेरित है। संसार के विविध संस्कृतियों के मध्य भाषा का अंतर मनुष्य के सम्मुख एक बड़ी चुनौती रही है । अब आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के सहारे मनुष्य इस चुनौती से लड़ने को तैयार है ।

एआई 21वीं सदी में सबसे शक्तिशाली उपकरण बन गया है। लगभग हर क्षेत्र में एआई की मदद से हम अपने कार्यक्षेत्र में संतुलन बैठा पाने में समर्थ हुए हैं । एआई की मदद से हम कोई भी काम एक मिनट/सेकेंड में कर सकते हैं। एआई ने भाषा प्रसंस्करण, छवि पहचान, रोबोटिक्स और स्वायत्त प्रणालियों सहित अनुप्रयोगों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए दरवाजे खोल दिए हैं। दिन-ब-दिन हम देख सकते हैं कि एआई की मदद से कई उपकरण खोजे जा रहे हैं, उदाहरण के लिए हम स्वास्थ्य क्षेत्र में विभिन्न उपकरण ले सकते हैं जो शुरुआती बीमारी का पता लगाने और उपचार के परिणामों में सुधार करने में सक्षम हैं। शिक्षा में, इंटेलिजेंट ट्यूटरिंग सिस्टम के अनुभव प्रदान करने के लिए एआई का लाभ उठा रहे हैं। परिवहन में, एआई एल्गोरिदम द्वारा निर्देशित स्व-ड्राइविंग कारें हैं, जो हमारी सड़कों को सुरक्षित बनाने और यातायात को कम करने की क्षमता रखती हैं।

एआई का उपयोग कार्यों और प्रक्रियाओं को स्वचालित करने के लिए किया जा सकता है, जिससे कंपनी की दक्षता और उत्पादकता में वृद्धि होती है। आने वाले वर्षों में एआई हर क्षेत्र में बेहतर अवसर लाएगा। एआई का भविष्य चुनौतीपूर्ण और रोमांचक दोनों है, यह आज के तेजी से बढ़ते परिवेश में अत्यंत प्रभावी कारक है । निरंतर अनुसंधान, सहयोग और नैतिक दिशानिर्देशों के साथ, एआई में मानवता के लिए एक उज्जवल और अधिक समृद्ध भविष्य को आकार देने की क्षमता है।

भारत में मातृसत्तात्मक समाज

जाह्नवी डेका

समाज विज्ञानी

IIDS, NEW DELHI

आज जब हम सिर्फ लैंगिक समानता के बारे में बात करते हैं तो यह जानकर लगभग हैरानी होती है कि दुनिया का सबसे बड़ा मातृसत्तात्मक समाज भारत में मौजूद है। हममें से अधिकांश लोग केवल यही सोचते हैं कि मातृसत्तात्मक समाज अतीत का हिस्सा है या केवल एक सिद्धांत या अधिक व्यापक सोच के रूप में पुस्तक में मौजूद है, यह अफ्रीका या लैटिन अमेरिका के किसी दूरस्थ क्षेत्र में मौजूद हो सकता है। नहीं, यह सच है कि यह भारत में भी मौजूद है। सवाल उठता है कि यह भारत में कहां है? और क्या यह सच है कि भारत में सबसे बड़ा मातृसत्तात्मक समाज मौजूद है? उत्तर है, हाँ।

भारत के उत्तर-पूर्व राज्यों में विविध जातीय संरचना है, प्रत्येक जाति-जनजाति की अपनी संस्कृति और रीति-रिवाज है। हममें से अधिकांश लोगों को भारत के उत्तर-पूर्व के बारे में बहुत सीमित जानकारी है। हममें से अधिकांश इस क्षेत्र को असम या असम की चाय के नाम से जानते हैं, इसके अलावा हम आमतौर पर इस क्षेत्र में संघर्ष के बारे में जानते हैं जैसे आजकल, मणिपुर में संघर्ष है और नागालैंड में नागा विद्रोही, असम में बोडो और उल्फा जैसे अन्य विद्रोही समूह हैं। । लेकिन इन संघर्षों और विद्रोही समूहों के अलावा इस क्षेत्र में प्राकृतिक सुंदरता का जादू है। इस भूमि पर विभिन्न जनजातियों का प्रभुत्व है और अतीत में यह क्षेत्र ज्यादातर स्वायत्त था। मुगल काल में भी इस भूमि को भारतीय क्षेत्र में शामिल करने के कई प्रयास हुए लेकिन मुगल सेना विफल रही। केवल अंग्रेजों ने असम के क्षेत्र के अंतर्गत भारतीय क्षेत्र में इस भूमि का अधिग्रहण किया।

मेघालय कभी असम का हिस्सा था जो 21 जनवरी, 1972 को असम से अलग हुआ था। असम और बांग्लादेश के बीच स्थित इस प्रदेश की प्राकृतिक छटा निराली है। इसकी राजधानी शिलांग भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया के सबसे खूबसूरत शहरों में से एक है। हममें से अधिकांश मेघालय को एक ऐसे राज्य के रूप में जानते हैं जहां चेरापूंजी स्थित है और अब यह मासिनराम के लिए प्रसिद्ध है। हम अपने स्कूल में सबसे अधिक वर्षा वाले क्षेत्र के रूप में पढ़ा करते थे। जैसे ही आप शिलांग में प्रवेश करते हैं, आप मातृसत्तात्मक समाज को महसूस करने लगते हैं । रेहड़ी से लेकर दुकानों, रेस्तरां से लेकर डिपार्टमेंटल स्टोर तक अधिकांश महिलाओं द्वारा चलाए जा रहे हैं जिनमें बहुत सारे पुरुष कर्मचारी हैं। यहां पुरुषों को भी महिला मालिक के अधीन काम करने में कोई समस्या नहीं है या फिर अगर परिवार द्वारा व्यवसाय चलाया जाता है तो महिला व्यवसाय का नेतृत्व करेगी। व्यवसाय और अन्य पारिवारिक मुद्दों में भी पुरुष को महिला अधिकार की स्वीकृति है। और यह केवल मेघालय के और काफी हद तक स्वीकार की जाती है।

मेघालय में तीन जनजातियों, गारो, खासी और जांतिया का प्रभुत्व है और वे क्रमशः गारो, खासी और जांतिया पहाड़ियों पर रहते थे। इन तीन जनजातियों में मेघालय की आबादी पर खासी जनजातियों का वर्चस्व है । खासी जनजाति और कुछ अन्य उप जनजातियों में मातृसत्तात्मक विचारधारा पायी जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में जैसे ही कोई प्रवेश करता है, सार्वजनिक क्षेत्र में हर जगह महिलाएं ही नजर आती हैं। महिलाएं छोटे व्यवसाय और अन्य स्थानीय कार्य चलाती हैं। लेकिन न केवल व्यवसायों का वर्चस्व इस समाज को मातृसत्तात्मक बनाता है बल्कि महिलाओं को संपत्ति पर पूरा अधिकार है या परिवार की सबसे छोटी बेटी को संपत्ति का अधिकार है। और वह परिवार, अपनी माँ, पिता और अन्य बड़ी बहनों और कभी-कभी भाइयों के परिवार की भी देखभाल करती है। हालाँकि भाइयों पर अपने परिवार के विपरीत बहन के परिवार की देखभाल करने की ज़िम्मेदारी होती है। उनके परिवार को उनकी पत्नी और उनके जीजा का समर्थन प्राप्त होता है । समाज का यह अनूठा स्वरुप ज्यादातर समाजशास्त्र की पाठ्य पुस्तकों में मौजूद है।

संपत्ति का अधिकार महिला को विश्वास और सुरक्षा प्रदान करता है। चूंकि पुरुषों की कोई संपत्ति नहीं है, इसलिए वे आमतौर पर लैंगिक हिंसा या भेदभाव में शामिल नहीं होते हैं। और वित्तीय स्वतंत्रता के कारण महिलाएं भी भेदभाव को कभी बर्दाश्त नहीं करती हैं। विवाह वर्जित नहीं है, समाज में अलगाव और पुनर्विवाह को कलंकित नहीं किया जाता है। वहीं बच्चे भी अपनी मां का सरनेम लिखते हैं और अपने जैविक पिता की कभी परवाह नहीं करते। वे अपनी मां के पति को अपने पिता के समान मानते हैं। ज्यादातर पिता शाम को आते हैं और सुबह घर से निकलकर अपनी बहनों के घर चले जाते हैं, चूंकि उन पर बहनों के घर की जिम्मेदारी होती है, यहां भी ऐसा ही होता है । यहां तक कि विवाह पूर्व यौन संबंध भी वर्जित नहीं है लेकिन व्यभिचार यहां वर्जित और दंडनीय अपराध है। हालाँकि महिलाएँ पुरुष को जितनी बार चाहें उतनी बार तलाक देने के लिए स्वतंत्र हैं यदि वह अक्षम है और जितनी बार चाहे उतनी बार शादी कर सकती है।

हालाँकि यहाँ इस समाज के लिए मातृवंशीय शब्द का प्रयोग किया गया है न कि मातृसत्तात्मक। यह गलती से नहीं किया जाता है ना मातृसत्तात्मक समाज के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है बल्कि पूरी जागरूकता के साथ प्रयोग किया जाता है। यह समाज मातृसत्तात्मक है जहां संपत्ति सबसे छोटी बेटी को विरासत में मिलती है और महिलाएं परिवार की मुखिया के रूप में कार्य करती हैं लेकिन साथ ही उच्च अधिकारियों में पुरुष का वर्चस्व मौजूद है। जैसे अधिकांश सरकारी अधिकारी पुरुष हैं, विधान सभा में 60 में से केवल चार विधायी सदस्य महिला हैं। मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों पर विचार करें, सभी पुरुष हैं। पुलिस और आर्मी सर्विस में भी ज्यादातर पुरुषों का ही दबदबा है। इतिहास में भी सभी राजा पुरुष थे और अब भी मेघालय के राजा पुरुष हैं और कोई महिला रानी राज्य के कारोबार पर हावी नहीं है। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि ऊपरी स्तर पर महिलाओं के साथ भेदभाव होता है। लेकिन फिर भी उन्हें उच्च अधिकारियों में भी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है।

प्रश्न उठता है कि क्या यह समाज सदैव मातृसत्तात्मक है? नहीं, कई इतिहासकारों का मानना है कि अतीत में, अधिकांश पुरुष अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए लड़ाई में जाते थे क्योंकि ये लड़ाकू जनजाति हैं। उनमें से कई की मृत्यु हो गई और उनमें से कई विदेश में बस गए, इसलिए पुरुषों की कमी हो गई और महिलाओं ने परिवार में प्रमुख स्थान ले लिया और साथ ही संपत्ति की उत्तराधिकारी बन गयीं । साथ ही पिता के उपनाम का कलंक भी मिट जाता है।

मातृसत्तात्मक समाज पुरुष के साथ किसी भी विरोध के बिना लैंगिक न्याय से युक्त समाज का रास्ता दिखाता है और बिना किसी हो-हल्ला के सुरक्षा प्रदान करता है । जबकि हमें इसके लिए शेष भारत में जागरूकता कार्यक्रम और सुरक्षा तंत्र के रूप में बहुत पैसा खर्च करना पड़ता है, । यह न केवल शेष भारत के लिए एक सबक है जहां आज भी आधुनिक समय में दहेज और अन्य कारणों से महिलाओं की हत्या की जाती है। हमें एक लैंगिक न्याय से युक्त समाज के निर्माण के लिए समान भागीदारी और संसाधनों के समान स्वामित्व की भी आवश्यकता है।

कबाब का इतिहास

अश्वनी तिवारी

तुर्की के रसोईघर मे बनने वाला यह व्यंजन अब भारतीयों की थालियाँ भी सजाता है। कई प्रकार के कबाब जैसे दही कबाब,गुलावटी कबाब, काकोरी कबाब न जाने ऐसे कितने अनगिनत नाम जो हमारी जुबां पर बसे हैं | ऐसा कहा जाता है कि सबसे पहले कबाब तुर्की ने दिया | शाही रसोई जब युद्ध के शिविरों में पहुंची तब कबाब का जन्म हुआ | इसको पकाना बेहद ही आसान था, सैनिक अपनी युद्ध यात्रा के दौरान मांस बचाकर रखते और इसे अपनी तलवार पर रख कर भुनते फिर तरह-तरह के मसालों के साथ खाते| बस यहीं से कबाब अस्तित्व में आया |

इसका सबसे पहला वर्णन 1377 ई मे लिखी गई किताब किस्सा-ए-युसूफ मे मिलता है। कबाब तुर्की अफगानों का पसंदीदा व्यंजन था | इतिहासकारों के अनुसार चंगेज़ खान भी युद्ध के समय मांस को तलवार पर रख कर पकाता | 16वीं शताब्दी में गोलकुंडा विजय के बाद मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने भी सैनिकों के लिए कबाब पकाए थे |

आज कबाब सिर्फ मांस का ही नहीं बल्कि सब्ज़ी, पनीर, दही आदि का भी बनाया जाता है | शाकाहारी कबाब की खोज भारत में हुई |

दही कबाब

सामग्री-

500 ग्राम दही
15-20 काजू
एक कप प्याज लम्बे टुकड़ों में कटा हुआ
हरी मिर्च बारीक कटी हुयी
1/2 कप मकई के आंटे का घोल
½ कप पनीर कद्दूकस किया हुआ
1 चम्मच काली मिर्च
1 चम्मच पिसी हुई लाल मिर्च
3 चम्मच घी
नमक स्वादानुसार

दही-कबाब बनाने का तरीका -

सबसे पहले दही को मखमली कपड़े में बाँधकर, उसके पानी निकलने तक टांग दें । एक पैन में घी गर्म कर उसमें काजू और प्याज़ को मध्यम आंच पर भुनें । प्याज़ को हल्का भूरा होने तक भूनने के बाद काजू और प्याज़ को निकाल लें । याद रखें प्याज़ अपनी गर्मी में स्वयं पकता है । अब काजू को मिक्सी में दरदरा पीस लें । उसके बाद एक कटोरी में भुने हुए प्याज़, काजू और कद्दूकस किये पनीर का मिश्रण तैयार कर लें ।

तैयार मिश्रण में 1 चम्मच काली मिर्च, नमक, 1 चम्मच लाल मिर्च तथा 2 चम्मच हरी मिर्च के बारीक टुकड़े एवं नमक स्वादानुसार मिला लें । अब आपकी फिलिंग तैयार है ।
अब मखमली कपडे से दही को निकालें तथा उसे अच्छे से गूँथ लें । अब इस दही की लोई बना लें । अब इन लोईयों में तैयार किया हुआ मिश्रण अच्छे से पैक करते हुए भर लें । अब कढाई में रिफाईन तेल डालें और दही के गोलों को मकई के आंटे के घोल में डुबोकर कढाई में भूरा रंग आने तक फ्राई करें ।

आपका दही कबाब तैयार है ।

युद्ध © नमिता राकेश

युद्ध लड़ना और जीतना
दो देशों
या कुछ देशों के लिए
प्रतिष्ठा का प्रश्न हो सकता है,
लेकिन युद्ध करना इतना आसान नहीं
बहुत कुछ जलता है-
सीमा पर, सीमा के भीतर
तहस नहस होती इमारतें, परिसम्पत्तियां,
ज़मीन, जायदाद।
गोला-बारूद जो सिर्फ बाहर ही नहीं
बल्कि
जिस्मों के भीतर तक
सब कुछ जला देता है
सब कुछ बिखर जाता है, टूट जाता है
कुछ भी बचता नहीं
कि फिर से समेटा जा सके
ये वही जान सकते हैं
जिन पर बीतती है ।
युद्ध सिर्फदेशों के बीच नहीं
जिस्मों के बीच भी लड़ा जाता है
कतरा-कतरा पिघलता विश्वास
तार-तार होती आत्मा
ज़र्रा-ज़र्रा टूटता मनोबल
कुछ नहीं छोड़ता आदमी में
और यह युद्ध दिखाई नहीं देता
सिर्फ महसूस किया जा सकता है ।

कविता का जन्म

© योगेन्द्र पाण्डेय
सलेमपुर, देवरिया

एक कविता जन्म लेती है
खेत मे फसल लहलहाने पर।
एक कविता जन्म लेती है,
बाग में फूल मुरझाने पर।

कविताओं का जन्म निरन्तर होता रहता है
हर क्षण,हर युग में।
हर एक घटना कविता का विषय है
चाहे वो हिटलर की तानाशाही हो
या बुध्द की अमृत वाणी।

क्यूँ रंगती हूँ

© श्रीमती अनूप कटारिया, जयपुर

क्यूँ रंगती हूँ मैँ इन डायरी के पन्नों को
कौन देखेगा इन इन्द्रधनुषी रंगों को
सब रंगहीन हो गए हैं,
क्यूँ खोलती हूँ मैँ मन के कपाटों को
कौन प्रविष्ट कर खोलेगा दो पाटों को
सब रागहीन हो गए हैं,
क्यूँ टटोलती हूँ अंतर्मन की तस्वीरों को
कौन सहेजेगा अतीत की सलवटों को
सब विस्मृति गर्त में डूब गए हैं,
क्यूँ मैँ बाट जोहती हूँ खोल नेहिल पलकों को
कौन बचाने वाला है इन डूबते रिश्तों को
सब आसक्तिहीन हो गए हैं,
क्यूँ खिलखिलाती हूँ देख स्वप्निल लोक को
कौन जीवन्त करेगा मेरे इन अरमानों को
सब दिवास्वप्न में खो गए हैं,
क्यूँ ढूँढती हूँ अमावस में सितारों को
कौन दिखायेगा शीतल ज्योत्स्ना को
सब दिग्भ्रमित हो गए हैं,
क्यूँ गिनती हूँ बीती उम्र के सुखद पलों को
कौन लिखेगा उन कीमती यादों को
सब गिनती भूल गए हैं,
क्यूँ स्थिर करती हूँ श्रान्त, क्लान्त गात को
कौन सहारा देगा स्खलित कदमों को
सब संवेदनहीन हो गए हैं ।

ग़ज़ल

© श्री अविनाश पाण्डेय वाराणसी

बेकरार दिल है ये, ढूँढता करार है
है किधर सुकूं पड़ा, उलझने हज़ार हैं...

बेसबब से अश्क क्यूँ, कर रहे हैं चश्मेनम
आस बह गए सभी, नज़र भी बेज़ार है...

धूप में खिली-खिली, झूमती थीं क्यारियाँ
गर्दिशों में घिर के अब, खो गयी बहार है...

.

अस्ल का किसे पता, बिक रहे हैं नस्ल सब
घर के दायरे में ही लग रहे बाज़ार हैं...

थी बड़ी चहल-पहल, अब नहीं सदा कोई
हुक्मरां के हुक्म से दरकते मज़ार हैं...

क था

कहानी - सबक

डॉ रचना सिंह ´रश्मि ´

नीरज और रागिनी ने आपस में मिलकर अपने पिता की कोठी और फार्म हाऊस बेचने.की योचना बनायी ।नीरज ने कहा, “रागिनी एक प्लान है लेकिन उसके लिए मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत है”, रागिनी ने कहा, “बताओ नीरज मुझे क्या करना है !” नीरज ने उसे योजना बताते हुए कहा, “एक पार्टी में मेरी मुलाकात एक बिल्डर से हुई, वह बडे-बड़े शापिंग मॉल बनाता है, कई शहरों में उसने मॉल बनाये हैं, लखनऊ में भी बनाने की बात कह रहा था। उसे किसी पॉश इलाके में जमीन चाहिए। अभी कुछ दिन पहले ही उसका फोन आया था। हमारे घर के सामने वाले रेस्तरां में बैठा था और उसने मुझे कॉफी पर बुलाया । वहां पर बैठे हुए हमारे फार्म हाउस पर नजर गयी बोलने लगा इस लोकेशन पर मॉल बने तो काफी अच्छा होगा, ये जगह शहर के बीच में है, मुझे पसंद है। तुम्हें पता है इसका मालिक कौन है !” मैंने कहा, “मुझे पता है, अंदर देखना चाहोगे सेठी साहब !” । वह चौक कर मुझे देखने लगा जैसे उसे मेरी बात पर विश्वास ही ना हुआ हो।

मैं उसे फार्म हाउस के अंदर ले गया, फिर उसे बताया की यह जमीन मेरे पापा की है या यों कहिये मेरी है । मैने सेठी को बाहर से फार्म हाउस दिखा दिया सेठी को हमारी कोठी और फार्म हाउस बहुत पंसद है । बस पापा किसी तरह कोठी और फार्म हाउस बेचने को तैयार हो जायें, पचास करोड़ रुपये सेठी देने को तैयार है । उसने कहा है जो मॉल बनाएगा उसमे दो शोरूम भी देगा, रागिनी ने पूछा, “मेरा कितना शेयर होगा?”, नीरज ने कहा, “दस करोड़ और एक शोरुम”, रागिनी बोली, “भाई ये तो कुछ कम है मेरे भी दो बच्चे हैं और अभी विनोद को व्यापार मे लाखों का घाटा हुआ है । नीरज ने हामी भरते हुए कहा, “चलो ठीक है, तुम मेरी बहन.हो, बीस करोड़ पक्का, पापातुम्हारी बात मान जायेंगे, मुझसे तो बहुत ही नाराज हैं मेरे नाम तक से चीढ़ जाते हैं।”मन ही मन रागिनी सोचने लगी कि नाराज तो वह मुझसे भी हैं, देखते हैं शायद मान जायें । कुछ पलों बाद मायूसी से बोली पापा किसी भी तरह नहीं मानेंगे वो बहुत जिद्दी इंसान हैं । नीरज ने कहा,“रागिनी मुझे तो डर लगता है कि पापा कहीं अपनी कोठी दीनू काका और काकी के नाम पर न कर जायें और फिर हम दोनों हाथ मलते ही रह जायें”। रागिनी ने कहा, “देखो नीरज, पापा पाँच साल से व्हील चेयर पर हैं और मां को अस्थमा है, वही दोनों ही तो उन लोगों की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए उन्हें कुछ तो मिलना ही चाहिए।”नीरज कहने लगा, “रागिनी तुम तो ऐसे बोल रही हो, जैसे वह लोग फ्री में ही काम कर रहे हैं, ऐश कर रहे हैं । बेटे को पढ़ा कर इंजीनियर बना दिया है, इतनी बड़ी कोठी में उन्हीं लोगों का राज चलता है । मैंने पेपर तैयार करवा लिये हैं, कल शाम को चार बजे पहुंचना लेकिन उन्हें ये न पता लगे कि हम साथ-साथ आये हैं।” रागिनी ने कहा, “ओके भाई, कल मिलते हैं।”

प्लान के मुताबिक नीरज पहले घर पहुंचा बेटे को इतने दिनों के बाद देखकर सरोज खुश हो गईं ।

क्र म श:

ममता जाग उठी, अखण्ड प्रताप जी अपने स्वार्थी बेटे को अच्छी तरह जानते थे, बोल पड़े, “नीरज इधर कैसे? आज रास्ता भूल गए क्या!”, नीरज ने कहा, “पापा आप से कुछ बात करनी है, मैने आपको फोन पर बताया था न एक बिल्डर को यह कोठी और फार्महाउस बहुत पंसद है और वह मुँह मांगी कीमत में खरीदने को तैयार है । पचास करोड़ दे रहा है।” अखण्ड प्रताप जी बोल पड़े, “लेकिन बेच कौन रहा है, हम दोनों यहाँ रहते हैं और ये मेरा घर है ।मैने बहुत अरमानों से बनाया है, इसका जो भी करना है मै करुंगा । तुम दोनों इससे दूर रहो तो बेहतर । मेरे पैर ही खराब हुये हैं, दिमाग नहीं । बेटे की बात मां को भी अच्छी नहीं लगी, वह नाराजगी भरे स्वर में बोलीं, "तुम्हें शर्म नहीं आ रही है, वैसे तो कभी भूले भटके भी शक्ल नहीं दिखाते हो पाँच साल से तुम्हारे पापा व्हीलचेयर पर हैं, कभी देखने आए बूढ़े मां-बाप को! हम लोग यहां दीनू और रामकली के ऊपर रहते हैं, अगर वो न होते तो हम लोग तो यूं ही मर जाते। कितने अरमानों से इसे बनवाया था, तुम लोगों के ही खातिर हम गांव का सब बेचकर यहां शहर आये थे कि हमारे बच्चे वहां पढ़ेंगे कैसे, बच्चों को कष्ट ना हो, तुम्हें तीन साल का लेकर आई थी और रागिनी तो इसी घर में पैदा हुई, इस कोठी को आज बेचने के लिए आकर खड़े हो गए हो ?”

नीरज कहने लगा, "मां थोड़ा प्रैक्टिकल बनो, मैं दिल्ली या दिल्ली के आसपास रहना चहाता हूँ, ग्रेटर कैलाश में कोठी देखी है। पचास करोड़ मिल रहा है । ये जिंदगी भर के लिए कमाई का ज़रिया बन जायेगा वह अलग, आप लोगों के लिए वन-बेडरूम फ्लैट काफी होगा । आप दोनों चलने फिरने से लाचार हो, बेकार में ही इतनी बड़ी जगह अकेले रहते हैं । आजकल समय खराब है। आप लोगों के साथ कोई अनोहनी न हो जाये हमेशा फिक्र रहती है, आप समझने की कोशिश करो ।” ”

इतना कहते हुए नीरज फाइल निकाल कर साइन करवाने के लिए पेज खोलने लगा था, तभी रागिनी आ गयी । आते ही बोली, “क्या बात है? आज सूरज पश्चिम से निकला है क्या, अरे नीरज तुम कैसे, चलो अच्छा है, माँ तुमकों याद करती है ।” नीरज ने कहा, “ठीक हूँ रागिनी, अब तुम ही पापा को समझाओ, इतना अच्छा सौदा हो गया है और यह हैं कि मेरा घर-मेरा घर की रट लगाये हुये हैं ।” रागिनी जैसे पापा को समझाते हुए कहने लगी, “पापा आपने भी तो दादा जी की गांव की ज़मीन बेचने के बाद ही यह कोठी बनवायी थी। अगर भाई इस कोठी की जगह मॉल बनवाना चाह रहा है तो क्या गलत कर रहा है ! अखण्ड प्रताप जी ने कहा, “शायद तुम दोनों भूल गये हो कि तुम्हारे दादा जी ने ही हमें शहर भेजा था, वो नहीं चाहते थे कि मैं और बच्चे गाँव में रहें, मै तो लखनऊ में व्यापार कर ही रहा था। सप्ताह में एक बार गाँव भी जाता था, एक बार बचपन में तुम मरते-मरते बचे थे तब तुमको लेकर हम लोग लखनऊ आये थे, कितनी मुश्किलों से तुमको बचाया गया था । तुम्हारे ठीक होने पर दादा जी ने बहुत बड़ा भंडारा करवाया था, उस दिन के बाद से ही मुझे लखनऊ में घर बनाने को कहा था क्योंकि वो मुझसे और तुमसे बहुत प्यार करते थे । गाँव मे न तो कोई अस्पताल था और न कोई ढ़ंग का स्कूल, वो चाहते थे तुम खूब पढो और डॉक्टर बनो, गाँव में अस्पताल बनाओ समझे। हमारी जो भी बाकी की जमीनें थी वो मैने बेचकर दादा जी के नाम रामप्रताप अस्पताल बना दिया और साथ ही अच्छा सा स्कूल भी । तुम को तो यह भी नहीं पता है, तुम कभी गांव ही नहीं गये । खैर छोड़ो तुम्हें इन बातों से क्या लेना देना । अगर देखा जाये तो इस कोठी और फार्महाउस पर तुम्हारे दादा जी का आशिर्वाद है। यह कोठी मैने गाँव की ज़मीन से बनवायी पर रहने के लिए।” नीरज ने खीज भरे स्वरों में कहा, “जो भी हो पर मुझे यहाँ नही रहना, आखिर है तो सब हम लोगों का ही !”

क्र म श:

रागिनी ने भी हामी भरते हुए कहा,"सही कह रहो भाई, ये लोग इतने जिद्दी हैं इसीलिए अनीता भाभी भी यहाँ नही रहना चाहतीं । मां आप हर समय, हर बात में टोका-टाकी करती रहती हैं, मैं तो बेटी हूं मुझसे भी हर समय शिकायत का पुलिंदा लेकर बैठी रहती हैं । इसलिए भैया- भाभी से बर्दाश्त नहीं होता है । नीरज बोल पड़ा, "हां रागिनी अब तुम्हें भी समझ में आ गया न कि इन लोगों को झेलना कितना मुश्किल है!"

नीरज जोर से बोला, "इन लोगों के लिए तो सबसे अच्छा वृद्धाश्रम है । दीनू काका और रामकली की छुट्टी करके वृद्धाश्रम चले जाएं, वहीँ आपकी उम्र के संगी-साथी भी मिल जाएंगे, आप बोर भी नहीं होंगे और समय भी आराम से कट जाएगा।

अखंड प्रताप जी दोनों हाथों से जोर-जोर से ताली बजाते हुए बोले," वाह-वाह मेरी औलाद, मुझे बेवकूफ़ बना रहे हो । दोनों भाई-बहन प्लान बना कर आये हो और ऐसे नाटक कर रहे हो जैसे अनजाने में दोनों आ गये हो । वह समय लद गये जब तुम मुझे बेवकूफ़ बना कर चेक पर साइन करवा ले जाते थे और रागिनी तुमसे तो कम से कम ऐसी उम्मीद नहीं थी लेकिन तुम्हारी माँ ने बताया कि तुमने तो लॉकर ही खाली कर डाला । तभी तो हम दोनों चौकन्ने हो गये । मेरी वसीयत में सब कुछ लिखा है और वह वकील साहब के पास सुरक्षित है। वैसे तुम्हारी जानकारी के लिए बता रहा हूँ कि हम वृद्धाश्रम मे ही रहेंगे।"

रागिनी और नीरज ने एक दूसरे को आंखों ही आंखों में देखा उनके चेहरे पर तुरंत रौनक आ गई। अखंड बाबू ने आगे कहा, "इतना खुश मत हो तुम दोनों, अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई है, कोठी और फार्महाउस पर ही वृद्धाश्रम बनेगा । जिसकी देखभाल रामप्रताप ट्रस्ट के मैनेजर रामबाबू करेंगे और जो भी हमारे पास है वह तुम्हारे और रागिनी के बच्चों को मिलेगा । रामप्रसाद ट्रस्ट से जो भी पैसा आयेगा वह तुमको और रागिनी को हर महीने मिल जाया करेगा ।

मैंने अपनी और सरोज की देहदान कर दी है इसलिए तुमको हमारे अंतिम संस्कार के लिए भी कष्ट नही उठाना पड़ेगा । वसीयत रजिस्टर्ड कर दी है और यह मेरा और सरोज दोनों का फैसला है। तुम दोनों के सपनों को तोड़ना मुझे बुरा लग रहा है। लेकिन ऐसी स्वार्थी संतानों के लिए यही सबक है ।

क्र म श: